बारह भावना

अनित्य द्रव्य रूप करि सर्व थिर, परजय थिर है कौन।
द्रव्य दृष्टि आपा लखो, परजय नय करि गौन।।

अशरण शुद्धातम अरु पंच गुरु, जग में सरनौ दोय।
मोह उदय जिय के वृथा, आन कल्पना होय।।

संसार पर द्रव्यन तैं प्रीति जो, है संसार अबोध।
ताको फल गति चार में, भ्रमण कह्यो श्रुत शोध।।

अेकत्व परमारथ तैं आतमा, एक रूप ही जोय ।
कर्म निमित्त विकलप घने, तिन नासे शिव होय।।

अन्यत्व अपने अपने सत्त्वकूँ, सर्व वस्तु विलसाय ।
ऐसें चितवै जीव तब, परतैं ममत न थाय।।

अशुचि निर्मल अपनी आतमा, देह अपावन गेह ।
जानि भव्य निज भाव को, यासों तजो सनेह।।

आस्त्रव आतम केवल ज्ञानमय, निश्चय–दृष्टि निहार ।
सब विभाव परिणाममय, आस्त्रवभाव विडार ।।

संवर निज स्वरूप में लीनता, निश्चय संवर जानि।
समिति गुप्ति संजम धरम, धरैं पाप की हानि ।।

वैराग्योत्पत्तिकाल में बारह भावनाओं का चिंतवन करने वाले ज्ञानी आत्मा इस प्रकार विचार करते हैं :–

अनित्य द्रव्य की दृष्टि से देखा जाय तो सर्व जगत् स्थिर है, पर पर्याय–दृष्टि से कोई भी स्थिर नहीं है, अतः पर्यायार्थिक नय को गौण करके द्रव्य–दृष्टि से एक आत्मानुभूति ही करने योग्य कार्य है।

अशरण इस विश्व में दो ही शरण हैं। निश्चय से तो निज शुद्धात्मा ही शरण है और व्यवहार नय से पंचपरमेष्ठी । पर मोह के कारण यह जीव अन्य पदार्थों को शरण मानता है।

संसार निश्चय से पर–पदार्थों के प्रति मोह–राग–द्वेष भाव ही संसार है। इसी कारण जीव चारों गतियों में दुःख भोगता हुआ भ्रमण करता है।

एकत्व निश्चय से तो आत्मा एक ज्ञानस्वभावी ही है। कर्म के निमित्त की अपेक्षा कथन करने से अनेक विकल्पमय भी उसे कहा है। इन विकल्पों के नाश से ही मुक्ति प्राप्त होती है।

अन्यत्व प्रत्येक पदार्थ अपनी–अपनी सत्ता में ही विकास कर रहा है, कोई किसी का कर्त्ता–हर्त्ता नहीं है। जब जीव ऐसा चिंतवन करता है तो फिर पर से ममत्व नहीं होता है।

अशुचि यह अपनी आत्मा तो निर्मल है पर यह शरीर महान् अपवित्र है, अतः हे भव्य जीवो! अपने स्वभाव को पहिचान कर इस अपावन देह से नेह छोड़ो।

आस्रव निश्चय दृष्टि से देखा जाय तो आत्मा केवल ज्ञानमय है। विभावभाव रूप परिणाम तो आस्रवभाव हैं, जो कि नाश करने योग्य हैं।

संवर निश्चय से आत्मस्वरूप में लीन हो जाना ही संवर है। उसका कथन समिति, गुप्ति और संयम रूप से किया जाता हैं, जिसे धारण करने से पापों का नाश होता है।

निर्जरा संवरमय है आत्मा, पूर्व कर्म झड़ जाय।
निज स्वरूप को पायकर, लोक शिखर जब थाय।।

लोक लोक स्वरूप विचारिकें, आतम रूप निहार।
परमारथ व्यवहार गुणि, मिथ्याभाव निवारि।।

बोधिदुर्लभ बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहि।
भव में प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं।।

धर्म दर्शज्ञानमय चेतना, आतमधर्म बखानि ।
दयाक्षमादिक रतनत्रय, यामें गर्भित जानि।।

निर्जरा ज्ञानस्वभावी आत्मा ही संवर (धर्म) मय है। उसके आश्रय से ही पूर्वोपार्जित कर्मों का नाश होता है और यह आत्मा अपने स्वभाव को प्राप्त करता है।

लोक लोक (षट् द्रव्य) का स्वरूप विचार करके अपनी आत्मा में लीन होना चाहिये। निश्चय और व्यवहार को अच्छी तरह जानकर मिथ्यात्व भावों को दूर करना चाहिये।

बोधिदुर्लभ ज्ञान आत्मा का स्वभाव है, अतः वह निश्चय से दुर्लभ नहीं है। संसार में आत्मज्ञान को दुर्लभ तो व्यवहार नय से कहा गया है।

धर्म आत्मा का स्वभाव ज्ञान–दर्शनमय है। दया, क्षमा आदि दशधर्म और रत्नत्रय सब इसमें ही गर्भित हो जाते हैं।

प्रश्न -

१. निम्नलिखित भावनाओं संबंधी छंद अर्थसहित लिखिये :–
अनित्य, एकत्व, संवर, बोधिदुर्लभ।

२. पं॰ जयचंदजी छाबड़ा के व्यक्तित्व एवं कर्तृत्व पर प्रकाश डालिये।

Please inform us of any errors on rajesh@AtmaDharma.com